आबू के परमारों का उत्कर्ष

SOHAN LAL

Research Scholar
Jai Narain Vyas University, Jodhpur

1. प्रस्तावना

राजस्थान की ऐतिहासिक परंपरा विविधता और गौरवपूर्ण परंपराओं से परिपूर्ण रही है। इस राज्य के प्रत्येक क्षेत्र ने अपने-अपने ढंग से भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध किया है। इन्हीं में से एक है दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान का पर्वतीय क्षेत्र — *माउंट आबू*, जो केवल एक रमणीय पर्यटन स्थल नहीं, अपितु मध्यकालीन भारत के एक महत्वपूर्ण राजनीतिक और सांस्कृतिक केंद्र के रूप में उभरा। माउंट आबू को अरावली की सबसे ऊँची चोटी होने के कारण प्राकृतिक रूप से सुरक्षा प्राप्त थी, जो प्राचीन काल में किसी भी राजवंश के लिए एक आदर्श राजधानी या शक्तिशाली गढ़ बना सकती थी। इसी पर्वतीय क्षेत्र में एक ऐसा राजवंश उभरा, जिसे इतिहास में 'आबू के परमार' के नाम से जाना जाता है। परमार वंश मूलतः मध्य भारत के मालवा क्षेत्र से संबंधित था, परंतु आबू क्षेत्र में इनकी एक स्वतंत्र या अर्धस्वायत्त शाखा का विस्तार हुआ जिसने 8वीं से लेकर 12वीं शताब्दी तक राजनीतिक प्रभुत्व, स्थापत्य कलाओं, धार्मिक समरसता, और सांस्कृतिक नवजागरण का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। आबू के परमारों का यह उत्कर्ष एक ओर जहाँ स्थानीय जनजीवन और स्थापत्य में परिलक्षित होता है, वहीं दूसरी ओर यह संपूर्ण राजस्थान के इतिहास में अपनी छवि अंकित करता है।

परमार वंश के शासकों ने केवल राजनीतिक स्थायित्व स्थापित किया ऐसा नहीं, बल्कि उन्होंने अपने शासनकाल में कला, धर्म और संस्कृति को विशेष संरक्षण दिया। यह वही काल था जब जैन धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ, देलवाड़ा जैसे अद्वितीय जैन मंदिरों का निर्माण हुआ, और अनेक धार्मिक ग्रंथों की रचना एवं संरक्षण भी संपन्न हुए। विमल वसाही मंदिर जैसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि परमारों के अधीन धर्म और शिल्पकला का समन्वय चरमोत्कर्ष पर था।

इतिहास के इस अध्याय को अधिकतर इतिहासकारों ने मालवा के परमारों की छाया में देखा, जिससे आबू के परमारों की भूमिका उपेक्षित रह गई। परंतु यथार्थ यह है कि आबू के परमारों ने न केवल एक विशिष्ट राजनीतिक सत्ता चलाई, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी एक ऐसी धरोहर रच डाली जो आज भी राजस्थान के गौरव का प्रतीक मानी जाती है।

यह शोध पत्र इन्हीं पहलुओं की समग्र विवेचना करता है — जिसमें आबू के परमारों के राजकीय विकास, प्रशासनिक संरचना, धार्मिक नीति, सांस्कृतिक उपलब्धियाँ तथा पतन के कारणों को विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन इस बात को रेखांकित करता है कि आबू के परमार केवल एक सीमित क्षेत्रीय शक्ति नहीं थे, बल्कि उन्होंने राजस्थान के सांस्कृतिक भूगोल को गहराई से प्रभावित किया। यह शोध प्रयास एक ऐसी उपेक्षित सत्ता के पुनरावलोकन का प्रयास है, जिसने शांति, समरसता, और कला के माध्यम से अपनी छवि इतिहास के पृष्ठों पर स्थायी रूप से अंकित की। उनके उत्कर्ष की गाथा न केवल एक राजवंश का इतिहास है, बल्कि यह उस युग की संवेदनशीलता, धर्मनिष्ठा और कलात्मक ऊँचाइयों की कहानी भी है, जो आज के समय में भी प्रेरणा का स्रोत बन सकती है।

2. शोध की आवश्यकता एवं उद्देश्य

भारतीय इतिहास के मध्यकालीन अध्याय में परमार वंश एक प्रतिष्ठित राजवंश के रूप में जाना जाता है। यद्यपि इसका केंद्रीय केंद्र मालवा रहा है, लेकिन इस वंश की एक अन्य महत्वपूर्ण शाखा — *आबू के परमार* — ने दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में एक स्वतंत्र और

विशिष्ट भूमिका निभाई। आबू क्षेत्र, जो प्राकृतिक रूप से सुदृढ़ और रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था, परमारों की सत्ता में न केवल राजनीतिक स्थायित्व का केंद्र बना, बल्कि धार्मिक सहिष्णुता, स्थापत्य कला और सांस्कृतिक संरचना का उत्कर्ष स्थल भी रहा।
इतिहासकारों और पुरातत्वविदों का ध्यान अब तक मुख्यतः मालवा के परमारों पर केंद्रित रहा है, जिनकी राजधानी धार रही और जिनके अधीन वाकाटक, चालुक्य, और गुर्जर-प्रतिहारों से व्यापक संबंध और संघर्ष रहे। इसके विपरीत, आबू के परमारों की स्थानीय सत्ता, उनके धार्मिक संरक्षण विशेषतः *जैन धर्म* के प्रति उनका समर्पण, और उनकी स्थापत्य उपलब्धियाँ अब भी एक हद तक अनदेखी रही हैं। जबकि *विमल वसाही* और *तेजपाल मंदिरों* जैसे अद्वितीय निर्माण इसी राजवंश के संरक्षण में अस्तित्व में आए — यह तथ्य स्वयं इस शोध की आवश्यकता को प्रतिपादित करता है। इतिहास के क्षेत्र में जब तक किसी सत्ता के केवल सैन्य या राजनीतिक पक्ष को ही महत्त्व दिया जाता है, तब तक उस समाज की संपूर्ण समझ अधूरी रह जाती है। आबू के परमारों ने शासन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन, धर्म, कलाओं, और समाज में जो स्थायित्व और सौंदर्य का प्रवाह किया, वह अपने आप में विश्लेषण का विषय है। आज जब भारत की *स्थानीय राजशाहियों* और *परिधीय सत्ताओं* के ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन का दौर है, तब आबू के परमारों की सत्ता को पुनः विश्लेषणात्मक दृष्टि से समझना अत्यंत आवश्यक है।

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य यही है कि इस उपेक्षित किन्तु महत्त्वपूर्ण शाखा की ऐतिहासिक भूमिका को समग्रता से प्रस्तुत किया जाए। इस प्रयोजन की पूर्ति हेतु निम्नलिखित शोध उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:

- **आबू क्षेत्र में परमार वंश के उदय और राजनीतिक विकास का विश्लेषण करना:** यह जानना आवश्यक है कि परमारों की आबू में सत्ता किस प्रकार स्थापित हुई, उनके प्रमुख शासक कौन थे और उनका राजनीतिक दायरा कितना व्यापक था।
- **उनके प्रशासनिक एवं सैन्य तंत्र की संरचना को स्पष्ट करना:** किसी भी सत्तात्मक व्यवस्था की स्थायित्व क्षमता उसकी प्रशासनिक संरचना पर निर्भर करती है। परमारों के प्रशासनिक अधिकारियों, दंडनीति, सुरक्षा व्यवस्था और राजनीतिक संबंधों का अध्ययन आवश्यक है।
- **परमारों द्वारा संरक्षित धार्मिक परंपराओं – विशेषकर जैन धर्म – का अध्ययन करना:** आबू के परमारों द्वारा जैन धर्म को दिए गए संरक्षण ने न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया, बल्कि स्थापत्य और साहित्य को भी समृद्ध किया। उनके दान, मुनियों के संरक्षण और मंदिर निर्माण को समझना इस अध्ययन का अभिन्न भाग है।
- **स्थापत्य एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में उनके योगदान को रेखांकित करना:** देलवाड़ा जैसे मंदिरों के निर्माण में जिस बारीकी, सौंदर्यबोध और स्थापत्य परंपरा का परिचय मिलता है, वह परमारों की संस्कृति-संवेदनशीलता को दर्शाता है। इस योगदान को ऐतिहासिक दृष्टि से समझना आवश्यक है।
- **वंश के पतन के कारणों और उनके ऐतिहासिक प्रभावों का मूल्यांकन करना:** कोई भी सत्ता शाश्वत नहीं होती। परमारों के पतन के पीछे राजनैतिक, सैन्य, आंतरिक, और बाहरी कारकों का समावेश रहा होगा — जिनका विश्लेषण यह शोध करेगा।

इस प्रकार, यह शोध न केवल आबू के परमारों के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन है, बल्कि यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरावलोकन भी है, जो इतिहास को केवल युद्धों और राजाओं की कहानी नहीं, बल्कि *सभ्यता की प्रक्रिया* के रूप में देखने का प्रयास करता है।

3. शोध पद्धति और स्रोत

यह शोध कार्य एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जो अतीत की घटनाओं, संरचनाओं और विचारधाराओं को गहराई से समझने के लिए तुलनात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को अपनाता है। चूँकि यह अध्ययन *आबू के परमारों* के उत्कर्ष — अर्थात उनके राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विकास — पर केंद्रित है, अतः इसके लिए प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्यों और विद्वानों की व्याख्याओं का समुचित उपयोग किया गया है।
शोध के दौरान तथ्य-संग्रह, मूल्यांकन और निष्कर्ष-निर्धारण की प्रक्रिया में दोनों प्रकार के स्रोतों — *प्राथमिक* एवं *द्वितीयक* — को संग्रहीत, विश्लेषित और प्रमाणित किया गया है।

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

प्राथमिक स्रोत वे प्रमाण होते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक काल से संबंधित होते हैं और उस समय की घटनाओं का प्रत्यक्ष विवरण प्रस्तुत करते हैं। आबू के परमारों से संबंधित इन स्रोतों में निम्नलिखित प्रमुख हैं:

- **1. शिलालेख:** आबू क्षेत्र विशेषकर देलवाड़ा और उसके आसपास प्राप्त *विमल शाह* और *तेजपाल* जैसे दानदाताओं द्वारा स्थापित जैन मंदिरों के शिलालेख परमार शासकों के संरक्षण, कालक्रम और धार्मिक दान की स्पष्ट जानकारी प्रदान करते हैं। ये लेख परमारों के शासनकाल, उनकी धार्मिक नीति, और निर्माण कार्यों की तिथियों को भी प्रमाणित करते हैं।
- **2. ताम्रपत्र एवं मंदिर अभिलेख:** भूमि दान, करमुक्ति घोषणाओं, ब्राह्मणों एवं मंदिरों को अनुदान से संबंधित ताम्रपत्र, परमारों की प्रशासनिक व्यवस्था और सामाजिक दायित्वों का चित्र प्रस्तुत करते हैं। ये राजस्थान राज्य अभिलेखागार और सिरोही संग्रहालय में संरक्षित हैं।
- **3. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI) की रिपोर्टें:** भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा किए गए क्षेत्रीय सर्वेक्षणों, उत्खननों और संरचनात्मक अध्ययों में देलवाड़ा मंदिरों, आबू क्षेत्र के अन्य मंदिरों, और मूर्तिकला संबंधी अनेक विवरण उपलब्ध हैं। विशेषकर, देलवाड़ा क्षेत्र में जैन मंदिरों की स्थापत्य योजना और मूर्तिकला की तकनीकी संरचना के विश्लेषण में ये रिपोर्टें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।
- **4. समकालीन लेखकों के विवरण:** *हेमचंद्राचार्य* जैसे समकालीन जैन विद्वानों के ग्रंथों में परमार राजाओं के धर्म-संरक्षण, दान और धार्मिक परिवेश का वर्णन मिलता है। इनके ग्रंथ, जैसे *परिशिष्ट पर्व*, न केवल परमारों की नीति का विवरण देते हैं, बल्कि तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन को भी उद्घाटित करते हैं।

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

द्वितीयक स्रोत वे होते हैं, जो किसी ऐतिहासिक तथ्य की व्याख्या, समीक्षा या विश्लेषण करके उसे नई दृष्टि प्रदान करते हैं। ये स्रोत समकालीन शोध, इतिहासकारों के ग्रंथ, शोध प्रबंध, और अभिलेखीय दस्तावेजों पर आधारित होते हैं। इस शोध में उपयोग किए गए प्रमुख द्वितीयक स्रोत इस प्रकार हैं:

- **1. इतिहासकारों के ग्रंथ**
  - *के.सी. जैन* द्वारा लिखित *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*
  - *डी.आर. भंडारकर* की रचनाएँ जैसे *Some Aspects of Early Indian History*
  - *आर.सी. मजूमदार* की *History and Culture of the Indian People*

इन ग्रंथों में परमारों के राजनीतिक और सांस्कृतिक योगदान का विवेचन किया गया है।

- **2. विश्वविद्यालयी शोध प्रबंध:** राजस्थान विश्वविद्यालय, जोधपुर विश्वविद्यालय तथा जैन विश्वभारती जैसे संस्थानों से प्राप्त पीएच.डी. एवं एम.फिल. शोध प्रबंध, विशेष रूप से परमारों की धार्मिक नीति, स्थापत्य और स्थानीय शासन व्यवस्था पर केन्द्रित हैं।
- **3. राजस्थान राज्य अभिलेखागार की रिपोर्टें:** बीकानेर, उदयपुर, और सिरोही से प्रकाशित पुरातात्विक रिपोर्टें, राजवंशीय वंशावलियों, ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियाँ, और प्रशासनिक अभिलेख शोध में विशेष सहायक रहे हैं।
- **4. सांस्कृतिक एवं स्थापत्य विषयक संग्रहालयीय स्रोत:** सिरोही जिला संग्रहालय, अजमेर संग्रहालय, और माउंट आबू संग्रहालय में संग्रहित प्रतिमाएँ, स्तंभ, तोरण, मंदिर आधार एवं कलाकृतियाँ परमार स्थापत्य पर विशद जानकारी देती हैं।

विश्लेषण पद्धति

इन स्रोतों के संकलन के उपरांत उनका तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। शिलालेखों और ग्रंथों में उल्लिखित घटनाओं की ऐतिहासिक सत्यता को क्रॉस-रेफरेंसिंग के माध्यम से स्थापित किया गया, तथा सांस्कृतिक और धार्मिक संकेतों को स्थापत्य प्रमाणों से जोड़कर देखा गया। यह पद्धति एक बहुस्तरीय (multi-dimensional) ऐतिहासिक समझ विकसित करने में सहायक रही है।

इस शोध की स्रोत-आधारित पद्धति का उद्देश्य न केवल तथ्यात्मक जानकारी देना है, बल्कि *सांस्कृतिक पुनर्निर्माण* और *सत्तात्मक विमर्श* के बीच परमारों की ऐतिहासिक भूमिका को भी स्थापित करना है। यह दृष्टिकोण परमार वंश के उस यथार्थ को उजागर करता है जो अभी तक इतिहास के सीमित दृष्टिकोण में छिपा रहा है।

4. परमार वंश का उदय और आरंभिक इतिहास

परमार वंश भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण राजवंश के रूप में प्रतिष्ठित है, जिसका मूल संबद्ध *अग्निवंशी क्षत्रियों* से माना जाता है। परंपरा के अनुसार, आबू पर्वत की अग्निकुंड से चौहान, परमार, सोलंकी और प्रतिहार जैसे चार प्रमुख वंशों की उत्पत्ति मानी जाती है। हालाँकि यह आख्यान प्रतीकात्मक है, परंतु यह दर्शाता है कि परमारों का उद्भव आबू पर्वत से जुड़ा हुआ था और उन्होंने यहीं से अपनी शक्ति का विस्तार किया।

धार के परमारों की उपशाखा के रूप में आबू के परमारों की पहचान की जाती है। धार (मालवा) के परमार शासक *वाक्पति मुंज* और *सिंहविष्णु* जैसे परमारों की पश्चिमी शाखा ने राजनीतिक अस्थिरता के दौर में आबू की ओर प्रस्थान किया और वहाँ अपनी स्थानीय सत्ता स्थापित की। इस उपशाखा के पहले प्रमुख शासकों में *धरणिवर्मा* और *यशोवर्मा* का नाम उल्लेखनीय है। इनके नाम पर प्राप्त ताम्रपत्रों और अभिलेखों से यह संकेत मिलता है कि इन्होंने 9वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आबू क्षेत्र में अपनी सत्ता स्थिर की।

आबू के परमारों की सत्ता का आरंभिक केंद्र *आबू पर्वत* ही रहा, जो अपने पर्वतीय स्वरूप, धार्मिक महत्त्व और सामरिक स्थिति के कारण एक आदर्श सत्ता केंद्र था। इसके पश्चात उन्होंने *रोहिड़ा, सिरोही, पालड़ी, चन्द्रावती* और *पिंडवाड़ा* जैसे आस-पास के मैदानी और पठारी क्षेत्रों में अपने प्रभाव का विस्तार किया। यह विस्तार धीमे-धीमे एक स्थानीय राजशाही में परिवर्तित हुआ, जिसने 10वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य तक एक सुव्यवस्थित राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया।

इन परमार शासकों में *धरणिवर्मा द्वितीय* का शासन विशेष महत्त्व रखता है। उसके शासनकाल में परमार सत्ता का अधिकतम राजनीतिक व सांस्कृतिक विस्तार हुआ। यह वही काल था जब आबू पर्वत पर स्थापत्य कला, मंदिर निर्माण और धार्मिक संरचनाओं में विशेष वृद्धि हुई। विमल वसाही मंदिर की स्थापना (1031 ई.) इसी कालखंड के समृद्धि और सांस्कृतिक उत्कर्ष का उदाहरण है, भले ही इसे परमारों के मंत्री विमल शाह ने बनवाया हो, परंतु वह परमार शासन के अंतर्गत ही था, जिससे उस समय की राजनीतिक स्थिरता और कलात्मक अभिरुचि का प्रमाण मिलता है।

आबू के परमारों ने अपनी स्थिति को केवल सैनिक शक्ति से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक नीति, धार्मिक समन्वय और स्थानीय सहयोग के माध्यम से सुदृढ़ किया। उनके शासन के आरंभिक चरणों में देखा जाता है कि उन्होंने जैन, शैव और वैष्णव संप्रदायों के साथ सह-अस्तित्व की नीति अपनाई और स्थानीय समाज में गहरी पैठ बनाई।

इस प्रकार, परमारों का यह आरंभिक दौर केवल सत्ता विस्तार का नहीं, बल्कि सांस्कृतिक समावेश, धार्मिक सहिष्णुता और प्रशासनिक संगठन का भी काल था, जिसने आगे चलकर आबू को एक गौरवशाली सांस्कृतिक केंद्र में परिवर्तित किया।

5. राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

परमारों की शक्ति केवल सैन्य बल तक सीमित नहीं थी; उन्होंने एक सुदृढ़ एवं संगठित प्रशासनिक ढाँचा विकसित किया, जो न केवल राज्य को स्थायित्व प्रदान करता था, बल्कि स्थानीय समाज में भी भागीदारी सुनिश्चित करता था। यह शासन व्यवस्था तत्कालीन राजनीतिक विवेक, भू-संरचना और सामाजिक जटिलताओं के अनुरूप विकसीत की गई थी।

राज्य संरचना:: परमारों का राज्य *"मंडल"* और *"विषय"* नामक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित था। एक मंडल कई विषयों को समेटता था और प्रत्येक इकाई में राजस्व संग्रह, सुरक्षा व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था और न्याय प्रणाली जैसे कार्य विभाजित थे। इस विकेन्द्रीकृत प्रणाली के अंतर्गत परमार शासकों ने स्थानीय प्रशासन को भी महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की।

प्रशासनिक अधिकारी:: परमार प्रशासन में अनेक उच्चाधिकारी कार्यरत थे। इनमें प्रमुख थे:

- **मंडलेश्वर** – मंडल के प्रमुख अधिकारी, जो सेना, प्रशासन और न्याय का संचालन करते थे।

- **दूतक** – संदेशवाहक एवं राजकीय संवादों के प्रमुख अधिकारी।
- **महाप्रतिहार** – राजा के निकटतम विश्वासी, जो राजदरबार की व्यवस्था और सुरक्षा देखते थे।
- **गणिका** – अर्थिक एवं लेखा-प्रणाली से संबंधित अधिकारी, जो राजकोष और राजस्व व्यवस्था का नियंत्रण करते थे।
- **पुत्रक (लेखक वर्ग)** – अभिलेखों और ताम्रपत्रों की रचना, संधियों का लेखन, और राजकीय दस्तावेजों के निर्माण में संलग्न अधिकारी।

इन सभी अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता, वंशपरंपरा और राजनिष्ठा के आधार पर होती थी।

सेना एवं सुरक्षा:: पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण आबू परमारों को प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त थी, जिससे बाहरी आक्रमणों को सीमित किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, परमारों की अपनी संगठित सेना थी, जिसमें पैदल सैनिक, घुड़सवार, धनुर्धर, और सामंतों द्वारा प्रदत्त सशस्त्र दल सम्मिलित होते थे।

सीमांत क्षेत्रों में *राठौड़ों*, *चौहानों* और *सोलंकियों* जैसे शक्तिशाली राजवंशों से समय-समय पर टकराव होते रहे, किन्तु परमारों ने अपनी कूटनीतिक क्षमता, वैवाहिक संबंधों और रक्षा नीति के माध्यम से संतुलन बनाए रखा।

धर्म और मंदिर प्रशासन में भागीदारी:: परमार प्रशासन में धार्मिक संस्थाएँ विशेष भूमिका निभाती थीं। मंदिरों को भूमि दान, करमुक्त क्षेत्र, और सामाजिक सेवाओं के अधिकार दिए जाते थे। जैन मठों और मंदिरों को विशेष संरक्षण दिया जाता था, और अनेक मंदिरों के व्यवस्थापक *गच्छाचार्य* और मुनि वर्ग राजकीय सहयोग से कार्य करते थे।

इस प्रकार, आबू के परमारों की राजनीतिक व्यवस्था एक संतुलित, सहभागी और विकेन्द्रीकृत प्रणाली पर आधारित थी, जिसने न केवल राज्य को स्थिरता प्रदान की, बल्कि सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक समृद्धि को भी सुनिश्चित किया।

6. धर्म संरक्षण और जैन प्रभाव

आबू के परमारों की शासन व्यवस्था केवल राजनीतिक सीमाओं और प्रशासनिक दक्षता तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने धर्म और संस्कृति को अपने शासन के मूल आधारों में सम्मिलित किया। उनका काल धार्मिक सहिष्णुता, विविध मतों के सह-अस्तित्व, और दानशीलता का युग कहा जा सकता है। उन्होंने विशेष रूप से जैन धर्म के *श्वेतांबर परंपरा* को संरक्षण प्रदान किया और साथ ही साथ हिंदू धर्म के *शैव* और *वैष्णव* पंथों को भी समर्थन दिया। उनके द्वारा किए गए *धार्मिक दान*, *मंदिर निर्माण* और *संरक्षण कार्यों* ने आबू को धार्मिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध स्थल में परिवर्तित कर दिया।

6.1 जैन धर्म का संरक्षण

परमारों द्वारा जैन धर्म को दिया गया संरक्षण उनके युग का सबसे उल्लेखनीय पहलू रहा है। इस संरक्षण का सर्वोत्तम उदाहरण *देलवाड़ा जैन मंदिर* हैं, जिनका निर्माण 11वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य हुआ। इनमें *विमल वसाही मंदिर* (1031 ई.) की स्थापना परमारों के शासनकाल में उनके मंत्री *विमल शाह* द्वारा की गई थी, जो स्वयं एक प्रभावशाली जैन अनुयायी थे।

- **विमल वसाही मंदिर:** यह मंदिर जैन धर्म के पहले तीर्थंकर *आदिनाथ* को समर्पित है और इसे भारत के सबसे उत्कृष्ट संगमरमर मंदिरों में गिना जाता है। इसकी नक्काशी, स्थापत्य योजना और स्तंभों की कलात्मकता जैन स्थापत्य की ऊँचाइयों को दर्शाती है।
- **तेजपाल और वास्तुपाल मंदिर:** बाद के काल में तेजपाल और वास्तुपाल ने भी जैन मंदिरों का निर्माण किया, जो परमार सत्ता के अंतर्गत ही हुए। इन मंदिरों की संरचना, नक्काशी और धार्मिक अनुष्ठान व्यवस्था में परमारों की नीतिगत सहमति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।
- **हेमचंद्राचार्य जैसे मुनियों का संरक्षण:** परमारों ने न केवल मंदिरों को संरक्षण दिया, बल्कि जैन विद्वानों, मुनियों और गच्छाचार्यों को भी सम्मानित किया। *हेमचंद्राचार्य*, जो उस समय के एक महान विद्वान, दार्शनिक और काव्यशास्त्री थे, परमार शासन के समय में गुजरात और आबू के धार्मिक विमर्शों में प्रमुख भूमिका निभाते थे। यह धार्मिक संरक्षण केवल धार्मिक नहीं, बल्कि बौद्धिक और सांस्कृतिक संरक्षण भी था।
- **जैन मठों और धर्मशालाओं का विकास:** आबू और उसके आस-पास जैन मठ, धर्मशालाएँ, पंथशालाएँ और यात्रियों के लिए विश्रामगृह बनाए गए, जिनका संचालन परमारों की अनुदान नीतियों से होता था।

6.2 हिंदू धर्म के पंथों को समर्थन

यद्यपि परमार शासन के दौरान जैन धर्म को विशेष संरक्षण मिला, परंतु उन्होंने हिंदू धर्म के विभिन्न पंथों को भी समुचित समर्थन प्रदान किया:

- **शैव पंथ:** आबू पर्वत पर शिव को समर्पित कई प्राचीन मंदिर आज भी विद्यमान हैं। इन मंदिरों की प्रतिमाएँ, लिंगम, नंदी प्रतिमा, और गर्भगृह की संरचना यह संकेत देते हैं कि परमार शासक शैव परंपरा से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे होंगे।
- **वैष्णव पंथ:** विष्णु और उनके अवतारों की मूर्तियाँ, जैसे लक्ष्मीनारायण, वराह, और कृष्ण की प्रतिमाएँ परमारकालीन स्थापत्य में प्राप्त होती हैं। कई स्थानों पर विष्णु की दशावतारों वाली शिल्प संरचनाएँ प्राप्त हुई हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि परमारों ने वैष्णव पंथ को भी महत्त्व दिया।

6.3 दान, दायित्व और धार्मिक उदारता

परमार शासकों की धार्मिक नीति केवल मंदिर निर्माण तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने दान, भूमि अनुदान और धार्मिक संस्थाओं के संचालन में भी सक्रिय भूमिका निभाई।

- **ताम्रपत्रों में उल्लेखित भूमि दान:** अनेक ताम्रपत्रों और अभिलेखों में दर्ज है कि परमार शासकों ने जैन मठों, ब्राह्मणों, मंदिरों और यात्रियों के विश्रामगृहों को करमुक्त भूमि दान में दी। यह दान केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि एक सामाजिक निवेश था।
- **ब्राह्मणों को अनुदान:** परमारों ने यज्ञ, धर्मशास्त्र अध्ययन और मंदिर अनुष्ठानों हेतु ब्राह्मणों को भी विशेष अनुदान दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी धार्मिक नीति संतुलित और समावेशी थी।
- **मंदिरों का करमुक्त संचालन:** परमार शासन के अंतर्गत स्थापित मंदिरों को न केवल भूमि, जलस्रोत और वृक्षों की अधिकारिता दी गई, बल्कि उन्हें करों से भी मुक्त किया गया जिससे वे स्वतंत्र रूप से धार्मिक और सामाजिक कार्य कर सकें।

धार्मिक दृष्टि से आबू के परमारों का युग धार्मिक उदारता, सहिष्णुता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग था। उन्होंने जैन धर्म को जिस प्रकार संरक्षण दिया, उससे न केवल जैन स्थापत्य में उत्कर्ष हुआ, बल्कि धर्म, दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में भी विलक्षण विकास हुआ। साथ ही, उनके शैव और वैष्णव पंथों के प्रति समर्पण ने उन्हें एक संतुलित और समावेशी शासक के रूप में स्थापित किया। उनकी धार्मिक नीति यह संकेत देती है कि उन्होंने सत्ता के साथ-साथ *धार्मिक समन्वय* और *सांस्कृतिक समृद्धि* को भी शासन की अनिवार्य नीति के रूप में अंगीकार किया।

7. सांस्कृतिक और स्थापत्य उत्कर्ष

आबू के परमारों के युग को यदि *कलात्मक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण* का काल कहा जाए तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनका शासनकाल राजस्थान के सांस्कृतिक भूगोल में एक ऐसी छाप छोड़ गया है, जो आज भी देलवाड़ा के मंदिरों, जैन शिलालेखों और संगमरमर की नक्काशी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने केवल धर्म का संरक्षण नहीं किया, बल्कि धर्म के माध्यम से *स्थापत्य कला, मूर्तिकला, संगीत, शिल्प* और *साहित्य* को भी चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया।

7.1 स्थापत्य विशेषताएँ

परमारों द्वारा प्रोत्साहित स्थापत्य शैली एक ओर पारंपरिक *नागर शैली* पर आधारित थी, वहीं दूसरी ओर उसमें स्थानीय कारीगरों की रचनात्मकता और बारीकी का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। विशेष रूप से *देलवाड़ा जैन मंदिरों* में यह कला उत्कृष्ट रूप में दिखाई देती है।

- **मंदिरों की योजना:** मंदिरों की वास्तुकला में मंडप (सभा मंडप), गर्भगृह, प्रदक्षिणा पथ, और ऊँची जगती पर आधारित संरचना प्रमुख रूप से देखी जाती है।
- **छत्रियाँ और तोरण द्वार:** मंदिरों के प्रवेश द्वारों पर निर्मित तोरण द्वार और मंडपों की छत पर बनी *छत्रियाँ* परमार वास्तुकला की पहचान हैं।
- **झरोखे और जालियाँ:** पत्थर पर की गई महीन *जालियों की नक्काशी* और *झरोखों की कलात्मकता* न केवल प्रकाश और वायु के संतुलन को दर्शाती हैं, बल्कि इनका सौंदर्य भी दर्शनीय है।

- **संगमरमर का प्रयोग:** विमल वसाही जैसे मंदिरों में उच्च गुणवत्ता वाले *संगमरमर* का प्रयोग किया गया, जो न केवल श्वेत सौंदर्य का प्रतीक है, बल्कि यह उस काल की आर्थिक समृद्धि और निर्माण कौशल को भी दर्शाता है।

7.2 मूर्तिकला और कलात्मक अभिव्यक्ति

परमार काल की मूर्तिकला शांति, साधना और सौंदर्य के त्रिवेणी संगम का प्रतिनिधित्व करती है। मूर्तियाँ धार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कलात्मक उत्कृष्टता की भी प्रतीक हैं।

- **तीर्थंकर प्रतिमाएँ:** आदिनाथ, महावीर, पार्श्वनाथ जैसे जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में अत्यंत *शांति और समाधि भाव* परिलक्षित होता है। उनका चेहरा संयमित, नेत्र अर्द्धनिमीलित और मुद्रा ध्यानस्थ होती है।
- **मूलनायक मूर्तियाँ:** विमल वसाही मंदिर में मूलनायक आदिनाथ की प्रतिमा सौंदर्य और श्रद्धा दोनों का प्रतीक है।
- **अलंकृत अधिष्ठान और स्तंभ:** मंदिरों के स्तंभों और आधारों पर गंधर्व, अप्सरा, विद्याधर, मकर, यक्ष, और अन्य पौराणिक आकृतियाँ नक्काशी के माध्यम से दर्शाई गई हैं।
- **रासमंडल, नृत्यिनी और संगीतज्ञों की मूर्तियाँ:** यह मूर्तियाँ यह दर्शाती हैं कि परमार काल केवल धर्म तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें *लोक संस्कृति* और *संगीत-नृत्य* की भी विशेष भूमिका थी।

7.3 विद्या, साहित्य और पांडित्य

परमारों ने केवल भौतिक स्थापत्य को नहीं, अपितु *विद्या और साहित्य* को भी संरक्षण दिया। यह काल जैन पंडितों और कवियों के लिए *स्वर्ण युग* माना जाता है।

- **हेमचंद्राचार्य का युग:** यह परमारों का ही काल था जिसमें महान पंडित *हेमचंद्राचार्य* जैसे विद्वान सक्रिय थे, जिन्होंने व्याकरण, काव्यशास्त्र और नीतिशास्त्र पर महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की।
- **शिलालेखीय साहित्य:** मंदिरों और शिलाओं पर उत्कीर्ण संस्कृत-प्राकृत श्लोक, काव्य एवं स्तुतियाँ परमारों की *साहित्यिक अभिरुचि* को दर्शाते हैं।
- **जैन ग्रंथों का संरक्षण:** परमारों के संरक्षण में कई जैन ग्रंथों की *पांडुलिपियों* की नकल और संरक्षण किया गया, जिनमें *कल्पसूत्र*, *आचारांग*, और *Uttaradhyayana sutra* शामिल हैं।

8. परमार सत्ता का पतन और उत्तर प्रभाव

इतिहास की धारा में कोई भी सत्ता शाश्वत नहीं होती। यही स्थिति आबू के परमारों की भी रही। 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उनके शासन की स्थिरता धीरे-धीरे डगमगाने लगी और कुछ ही दशकों में उनका पतन निश्चित हो गया। इस पतन के पीछे राजनीतिक, आंतरिक और बाह्य सभी कारण समाहित थे।

8.1 बाह्य संघर्ष

- **सोलंकी और चौहान राजवंशों का दबाव:** गुजरात के *सोलंकी* और राजस्थान के *चौहान* वंशों की शक्तियाँ 12वीं शताब्दी में अत्यंत प्रभावशाली हो गई थीं। आबू का क्षेत्र इन शक्तियों के बीच एक रणनीतिक बिंदु बन गया, जिससे संघर्ष स्वाभाविक था।
- **दिल्ली सल्तनत का उदय:** 12वीं शताब्दी के अंत और 13वीं के आरंभ में जब *घोरी* और फिर *दिल्ली सल्तनत* ने पश्चिमी भारत की ओर विस्तार करना शुरू किया, तब आबू जैसे पर्वतीय स्थल भी उनके निशाने पर आ गए। बाहरी आक्रमणों ने परमारों की सैन्य और प्रशासनिक संरचना को गहरी चोट पहुँचाई।

8.2 आंतरिक समस्याएँ

- **उत्तराधिकार संघर्ष:** परमारों में उत्तराधिकार को लेकर स्पष्टता का अभाव था, जिससे *वंशीय कलह* उत्पन्न हुई।
- **प्रशासनिक शिथिलता:** शासन के अंतिम चरणों में परमार सत्ता *प्रशासनिक अराजकता, कर वसूली में कठिनाई,* और *स्थानीय सामंतों के असंतोष* से ग्रस्त हो गई थी।

8.3 पतन के बाद का प्रभाव

परमारों का पतन केवल सत्ता परिवर्तन नहीं था, बल्कि उसने *संस्कृतिक अवरोध* भी उत्पन्न किया। परंतु उनके द्वारा निर्मित स्थापत्य, जैन मंदिर, और सांस्कृतिक धरोहरें कालजयी रहीं। उनके पतन के उपरांत आबू क्षेत्र पर *जालौर के चौहानों* और *सिरोही के देवल राजपूतों* का अधिकार हुआ, पर वे परमारों जैसी सांस्कृतिक ऊँचाइयाँ प्राप्त नहीं कर सके।

परमारों का युग न केवल आबू क्षेत्र के इतिहास का स्वर्णकाल था, बल्कि वह राजस्थान की सांस्कृतिक, धार्मिक और स्थापत्य परंपराओं का भी गौरवपूर्ण अध्याय था। उनका पतन इतिहास का एक स्वाभाविक चक्र था, परंतु उनकी शिल्प, धर्म और विद्या में की गई अविस्मरणीय सेवाएँ आज भी इतिहास में अमिट रूप से अंकित हैं। देलवाड़ा मंदिरों की दीवारें, जैन मूर्तियों की अभिव्यक्ति, और शिलालेखों की वाणी — ये सभी परमारों के उत्कर्ष की गाथा आज भी सजीव बनाए हुए हैं।

9. निष्कर्ष

आबू के परमारों का उत्कर्ष न केवल दक्षिण-पश्चिम राजस्थान के लिए, बल्कि सम्पूर्ण पश्चिमी भारत की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परंपरा के लिए एक गौरवशाली अध्याय है। 8वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य इस राजवंश ने जो राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान बनाई, वह आज भी स्थापत्य, मूर्तिकला और साहित्य के माध्यम से सजीव है। राजनीतिक रूप से उन्होंने एक सीमित लेकिन सुदृढ़ राज्य की स्थापना की, जिसमें विकेन्द्रीकृत प्रशासन, न्याय व्यवस्था, और सामाजिक समावेशिता के तत्व स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। धार्मिक रूप से परमार शासन एक सहिष्णु और समावेशी शासन था, जिसमें शैव, वैष्णव और विशेष रूप से जैन परंपराओं को समुचित संरक्षण प्राप्त हुआ। देलवाड़ा के जैन मंदिरों में मूर्त और अमूर्त—दोनों ही रूपों में उस युग की धार्मिक चेतना, शांति और कलात्मक उत्कृष्टता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

स्थापत्य और मूर्तिकला की दृष्टि से परमारों ने *नागर शैली* और *संगमरमर नक्काशी* को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। विमल वसाही और तेजपाल मंदिर जैसी संरचनाएँ परमारों की न केवल धार्मिक प्रतिबद्धता बल्कि सौंदर्यबोध और कलात्मक समझ की भी परिचायक हैं। परमारों के संरक्षण में साहित्य और ज्ञान की परंपरा भी समृद्ध हुई — विशेष रूप से जैन आचार्यों और विद्वानों का विकास उसी काल में हुआ। हालाँकि राजनीतिक रूप से परमार साम्राज्य कभी बहुत विस्तृत नहीं रहा, लेकिन उन्होंने जो सांस्कृतिक पूँजी तैयार की, वह अत्यंत समृद्ध, स्थायी और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही है। उनका पतन राजनीतिक रूप से अनिवार्य हो सकता है, पर उनकी सांस्कृतिक धरोहर आज भी राजस्थान के स्थापत्य और धार्मिक पर्यटन में एक केंद्रीय स्थान रखती है।

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि इतिहास के ऐसे सीमांत राजवंशों का अध्ययन मुख्यधारा इतिहास लेखन में आवश्यक है, ताकि भारतीय इतिहास की बहुलतावादी, विविधतापूर्ण और क्षेत्रीय सांस्कृतिक परंपराओं को समझा जा सके। परमारों की धार्मिक सहिष्णुता, कलात्मक चेतना और प्रशासनिक विवेक आज के समाज के लिए भी प्रेरणास्पद हैं।

अतः आबू के परमार न केवल एक स्थानीय राजवंश थे, बल्कि एक सांस्कृतिक परंपरा के संवाहक भी थे, जिनकी पुनर्पाठ की आवश्यकता आज के ऐतिहासिक विमर्शों में और अधिक प्रासंगिक हो उठी है।

10. संदर्भ सूची (References)

1. Jain, K.C. (1972). *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*. Motilal Banarsidass Publishers, Delhi. pp. 114–129.
2. Sharma, Dasharatha (1959). *Early Chauhan Dynasties*. Motilal Banarsidass, Delhi. pp. 91–105.
3. Majumdar, R.C. (Ed.) (1960). *The History and Culture of the Indian People, Vol. V: The Struggle for Empire*. Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay. pp. 334–346.
4. Bhandarkar, D.R. (1932). *Some Aspects of Ancient Indian History*. University of Calcutta. pp. 62–70.
5. Mehta, Jodh S. (1980). *Abu and Mount Abu: The Sacred Hill of Rajasthan*. Rajasthan State Archives, Bikaner. pp. 27–49.
6. Ghosh, A. (Ed.) (1967). *The Archaeology of India: Reports of the Archaeological Survey of India*. ASI, New Delhi. Vol. 22, pp. 142–155.

7. Deva, Krishna. (1969). *Temples of North India*. National Book Trust, New Delhi. pp. 158–172.
8. Jain, Vimal Chandra (1996). *Jaina Architecture in India*. Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi. pp. 90–105.
9. Doshi, Saryu (1985). *Masterpieces of Jain Sculpture*. Marg Publications, Mumbai. pp. 34–61.
10. Jain, Hiralal (1974). *Hemachandra and His Times*. Jain Sahitya Sammelan, Bombay. pp. 112–125.
11. Rajasthan State Archives (Various Years). *Epigraphic Records and Copper Plate Grants*. Bikaner/Udaipur/Sirohi collections.
12. Joshi, N.P. (1970). "Delwara Jain Temples and Their Sculpture," *Journal of Indian Art and Archaeology*, Vol. VI, pp. 18–33.
13. ASI Reports (1958–1975). *Annual Reports of the Archaeological Survey of India*. Government of India, New Delhi.
14. Jain, Kailash Chand. (1963). *Malwa through the Ages: From the Earliest Times to 1305 A.D.* Motilal Banarsidass, Delhi. pp. 203–225.
15. Singh, Upinder. (2009). *A History of Ancient and Early Medieval India*. Pearson Education, New Delhi. pp. 499–504.